जीवन विज्ञान शिक्षा : सर्वांगीण चिंतन एवं व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया

❁ डॉ. समणी हिमप्रज्ञा

शिक्षा और सर्वांगीण विकास

समाज और राष्ट्र के विकास का मूलभूत आधार शिक्षा है। शिक्षा के अभाव में कोई भी राष्ट्र, समाज या व्यक्ति विकास नहीं कर सकता। मानव जीवन का सम्पूर्ण विकास, सर्वोपरि उन्नति, मानव की सुप्त शक्ति का विकास शिक्षा से ही संभव है। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक प्रगति का आधार भी शिक्षा है। मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति शिक्षा से ही हो सकती है।

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो मनुष्य की जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक और सामंजस्यपूर्ण विकास में योग देती है। उसकी वैयक्तिकता का पूर्ण विकास करती है। उसके व्यवहार, विचार और दृष्टिकोण में परिवर्तन करती है। टी रेमाण्ट का कथन है-"शिक्षा विकास का वह क्रम है, जिसकी सहायता से मनुष्य स्वयं के शैशवावस्था से परिपक्वावस्था तक भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है। अरस्तू शिक्षा को मानसिक विकास का आधार मानता था। उनका मानना था कि शिक्षा से ही मानसिक विकास संभव है। आचार्य तुलसी भी इसी कथन की पुष्टि करते हुए कहते थे-"मानसिक व्यायाम का शिक्षा के साथ गहरा सम्बन्ध है। शिक्षा के द्वारा केवल पुस्तकीय ज्ञान ही उपलब्ध नहीं होता, मन भी प्रशिक्षित होता है।" शिक्षा का अभिप्राय एक निश्चित पाठ्यक्रम को सीखकर परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना ही नहीं, अपितु शिक्षा तो एक वह प्रक्रिया है, जो व्यक्ति का नैतिक विकास कर उसमें उच्च जीवन मूल्यों की उद्भावना करती है, जिससे वह समाजोपयोगी बन सके। गोखले शिक्षा को भारत के विकास की चाबी मानते थे। इसलिए उन्होंने अनिवार्य व निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा को लागू करने का प्रयास किया। शिक्षा को वे व्यक्ति के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास तथा परिवार की सुख-समृद्धि व सुखद-भविष्य के लिए आवश्यक मानते थे। स्वामी दयानन्द का मत था कि शिक्षा के माध्यम से ही सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में विद्यमान सभी दोषों, कुरीतियों तथा अन्ध-विश्वासों को जड़-मूल से समाप्त किया जा सकता है। वे भारत की दुर्दशा का प्रमुख कारण अशिक्षा तथा अज्ञान के अन्धकार को मानते थे। उन्होंने बिना किसी भेदभाव समाज के सभी लोगों के लिए अनिवार्य शिक्षा का समर्थन किया। उन्होंने प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति पर आधारित गुरुकुलों की स्थापना का भी समर्थन किया। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि शिक्षण संस्थाओं में जाति-पांति, आर्थिक स्थिति तथा धर्म के आधार पर कोई भेदभाव न हो तथा सबकी वेशभूषा, रहन-सहन भी एक जैसा होने से बालक हीनभावना एवं कुण्ठा से बच सकता है। आचार्य तुलसी भी शिक्षा को विकास का अपरिहार्य अंग मानते थे। उनके अनुसार अन्धविश्वासों, सामाजिक कुरूढ़ियों, अनुचित मान्यताओं और जीवनगत विकृतियों का अन्त शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। उन्होंने कहा-विद्यार्थियों को जाति, वर्ण और अमीर-गरीब के आधार पर नहीं किन्तु मानवता के आधार पर शिक्षा दी जाये, जिससे मानवीय गुणों का विकास हो।

शिक्षा समाज को संस्कारित करने का उपक्रम है। शिक्षा हो और जीवन में संस्कार या परिष्कार न आए तो मानना चाहिए कि कहीं कुछ कमी है। शिक्षा एक ऐसी विद्या है जो जीवन को संस्कारित बनाती है किन्तु वर्तमान शिक्षा पद्धति पर ध्यान दिया जाये तो स्थिति काफी निराशाजनक प्रतीत होती है। आज मां का स्थान आया ने ले लिया है। प्रभात जागरिका के स्थान पर फिल्मी गीत प्रतिष्ठा पा रहे हैं। गुड्डे-गुड्डियों के खेलों में जो सृजनात्मक चिन्तन था वह पिस्तोल-रॉकेट जैसे खिलौनों के कारण ध्वंसात्मक बन रहा है। दो-ढ़ाई वर्ष के बच्चों को स्कूली दिनचर्या में बांधकर घरेलू वातावरण से प्राप्त होने वाली मुक्त शिक्षा से वंचित रखा जा रहा है। शिक्षा का सम्बन्ध यदि जीवन-मूल्यों से न जुड़कर साक्षरता से जुड़ता है तो विद्यार्थी का बौद्धिक विकास तो हो सकता है पर उसकी रचनात्मक ऊर्जा को नई दिशा नहीं मिल सकती संभवतः इसी सोच के कारण आचार्य तुलसी आचारशून्य शिक्षा को अभिशाप मानते थे।

आचार्य तुलसी का मानना था कि जीवन-मूल्यों का ह्रास जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो रहा है। शिक्षा, चिकित्सा, प्रशासन, राजनीति, व्यवसाय एवं उद्योग आदि सभी क्षेत्र इस समस्या से ग्रस्त है। इसका प्रभाव व्यक्ति के राजनीतिक, मानसिक एवं भावात्मक विकास पर पड़ रहा है। मूल्यों के ह्रास का प्रमुख कारण है शिक्षा जगत में मूल्यों के प्रशिक्षण का अभाव।

आज शिक्षा जगत में विकास तथा जीविकोपार्जन के लिए अनेक विद्याशाखाओं को विकसित किया गया है, पर जीवन-मूल्यों की स्थापना, आध्यात्मिक विकास, भावनात्मक विकास, आन्तरिक रूपान्तरण हेतु विद्याशाखा का अभाव दृष्टिगोचर हो रहा है, जिसके फलस्वरूप शिक्षा जगत में अनैतिकता, भ्रष्टाचार, उच्छृंखलता, उद्दण्डता, तोड़-फोड़, चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता, बेईमानी, मादक द्रव्यों का सेवन आदि अनेक बुराइयों का प्रभाव बढ़ रहा है।

इन प्रभावों का आकलन कर आचार्य तुलसी ने कहा- शिक्षा पद्धति में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश होना चाहिए तभी हमारी संस्कृति के अनुरूप एक नए समाज एवं देश की रचना हो सकेगी। विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी सभी ने शिक्षा प्रणाली में बदलाव की बात कही थी किन्तु प्रयोग एवं प्रशिक्षण के अभाव में नैतिकता एवं चरित्र का ह्रास होता रहा। शिक्षा को जीविका का साधन माना जाने लगा। आचार्य तुलसी ने कहा- "शिक्षा को जीविका का साधन मानना, शिक्षा की मूल्यवत्ता को कम करना है। अब ऐसी विद्याशाखा विकसित हो, जो शिक्षा को जीवनोन्मुख बना सके। व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष व आध्यात्मिक पक्ष को उजागर कर सके।" इस रिक्तता की पूर्ति के लिए आचार्य तुलसी एवं आचार्य महाप्रज्ञ ने शिक्षा जगत को जीवन-विज्ञान का अभिनव अवदान दिया।

जीवन-विज्ञान सर्वांगीण विकास की नूतन शिक्षा प्रणाली

शिक्षा जगत की समस्याओं-चरित्रहीनता, अनुशासनहीनता के समाधान के लिए आचार्य तुलसी के समक्ष यह सुझाव आए कि नैतिक शिक्षा को लागू किया जाए। राजस्थान के तात्कालिक शिक्षामंत्री चन्दनमल बैद ने घोषणा की कि स्कूलों में नैतिक शिक्षा अनिवार्य है। उस समय आचार्य तुलसी ने कहा- पाठ्य-पुस्तकों से नैतिक शिक्षा का विकास नहीं हो सकता। परिवर्तन घटित करने के लिए प्रयोगात्मक प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

आचार्य तुलसी के अनुसार जीवन-विज्ञान शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और भावात्मक संतुलित विकास की प्रक्रिया है। यह अखण्ड व्यक्तित्व के निर्माण की एक प्रायोगिक प्रक्रिया है तथा संतुलित एवं परिपूर्ण विद्याशाखा है। संतुलित इसलिए है कि इसमें शारीरिक व बौद्धिक विकास के साथ-साथ मानसिक व भावनात्मक विकास का संतुलन स्थापित किया गया है। परिपूर्ण इसलिए है कि इसमें सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ प्रायोगिक अभ्यास भी अनिवार्य है।

जीवन-विज्ञान का उद्देष्य

- पुस्तकीय ज्ञान के साथ अच्छे ढंग से जीवन जीने की कला सीखाना।
- संवेगों पर नियंत्रण करने की पद्धति सिखाना।
- सामाजिक व्यवहार को निश्छल और मैत्रीपूर्ण बनाना।
- मादक वस्तुओं के सेवन से मुक्ति दिलाना।
- भाव परिष्कार और व्यवहार परिवर्तन के माध्यम से व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना।

आचार्य तुलसी ने अणुव्रत की आचार-संहिता के माध्यम से अच्छे नागरिक का प्रारूप समाज के सामने रखा था। जीवन-विज्ञान उसकी क्रियान्विति का प्रयत्न था।

स्वामी विवेकानन्द ने शताब्दी पूर्व कहा था- अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय होना चाहिए। आचार्य विनोबा भी इस अपेक्षा को बार-बार दोहराते थे। आचार्य तुलसी ने जीवन-विज्ञान के द्वारा इस अपेक्षा की पूर्ति की। जीवन-विज्ञान में अध्यात्म और विज्ञान-दोनों का समन्वय है। इसमें दर्शन, अध्यात्म और कर्मशास्त्र आदि प्राच्य-विद्याओं के साथ शरीर-विज्ञान, शरीर-क्रियाविज्ञान, समाजविज्ञान, मनोविज्ञान, पर्यावरणविज्ञान का अध्ययन भी समाविष्ट है।

आचार्य तुलसी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को दोषपूर्ण नहीं किन्तु अपर्याप्त मानते थे। उनका मानना था कि वर्तमान शिक्षा-प्रणाली शारीरिक एवं बौद्धिक विकास तो कर रही है किन्तु मानसिक व भावनात्मक विकास नहीं हो रहा है। जीवन-विज्ञान के द्वारा चारों आयामों को संतुलित रूप से विकसित किया जा सकता है। जीवन-विज्ञान के प्रयोगों द्वारा एकाग्रता, स्मृति, धारणा-शक्ति और संकल्प-शक्ति का विकास तो होता ही है, जीवन-व्यवहार का परिवर्तन भी होता है। सहिष्णुता, अनुशासन, दायित्व-बोध आदि का विकास बौद्धिक विकास के साथ बहुत जरूरी है। आन्तरिक प्रयोगों के द्वारा रासायनिक संतुलन स्थापित कर व्यवहार में परिवर्तन घटित किया जा सकता है।

जीवन-विज्ञान के रूप में मूल्यपरक शिक्षा की अवधारणा शिक्षा जगत को आचार्य तुलसी की अमूल्य-देन है। जीवन-विज्ञान से तात्पर्य है-संतुलित शिक्षा-प्रणाली के द्वारा ही संतुलित व्यक्तित्व व संतुलित समाज का निर्माण संभव है। संतुलित शिक्षा-प्रणाली का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से शारीरिक व बौद्धिक विकास के लिए प्रयत्न किया जा रहा है, वैसा ही प्रयत्न मानसिक व भावनात्मक विकास के लिए हो। ऐसा होने पर ही शिक्षा-प्रणाली संतुलित हो सकती है।

प्रश्न है कि उस संतुलन को प्रस्थापित करने वाले कौन-कौन से तथ्य हैं? जिन तत्त्वों के आधार पर परिवर्तन या परिष्कार द्वारा संतुलन स्थापित करने का प्रयत्न किया है, वे हैं-

1. प्राणधारा का संतुलन। 2. जैविक संतुलन की स्थापना। 3. क्षमता की आस्था का जागरण। 4. परिष्कार।

इसका प्रतिफलन चार आयामों में होगा-1. शारीरिक, 2. बौद्धिक, 3. मानसिक एवं 4. भावनात्मक विकास। इस प्रकार इन विभिन्न संतुलनों के माध्यम से संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण किया जा सकता है।

प्राणधारा एवं जैविक संतुलन- मानसिक एवं भावनात्मक विकास के लिए प्राणधारा का विकास व संतुलन आवश्यक है। प्राण के दो प्रवाह हैं-1. इड़ा (पेरा सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम) और 2. पिंगला (सिंपेथेटिक नर्वस सिस्टम)। मस्तिष्क का बायां हिस्सा बौद्धिक विकास के लिए उत्तरदायी है। अध्यात्म, अन्तश्चेतना का विकास, आंतरिक वृत्तियों का विकास-यह दाएं हिस्से का काम है। प्राण के इन दोनों प्रवाहों में संतुलन स्थापित होना जरूरी है। जीवन-विज्ञान का कार्य है कि जैविक दृष्टिकोण से जो असंतुलन हो रहा है, उसे रोककर संतुलन स्थापित किया जाए।

क्षमता की आस्था का जागरण- दर्शन की दृष्टि से कहा गया है-मनुष्य में अनंत ज्ञान होता है, अनन्तबल होता है, अनन्त आनन्द होता है। विज्ञान भी इसी निष्कर्ष तक पहुंचा है कि हमारे मस्तिष्क में अनन्त क्षमताएं हैं। जीवन- विज्ञान के द्वारा विद्यार्थियों में इस आस्था को जागृत करना है। हमारे भीतर अनन्त क्षमताएं हैं और उन्हें सक्रिय कर सकते हैं। उसमें ऐसी आस्था पैदा हो जाए कि कोई भी कार्य असंभव नहीं है। यदि उचित साधन सामग्री का संयोजन और संकलन हो तो प्रत्येक कार्य को संभव बनाया जा सकता है।

परिष्कार- किसी भी राष्ट्र के उत्थान और पतन का इतिहास पढ़ें, किसी भी समाज और व्यक्ति के उत्थान और पतन की कहानी पढ़ें, उनकी गहराई में तीन बातें मिलेगी। उत्थान के तीन कारण हैं-सम्यक् दृष्टिकोण, सम्यक् व्यवहार और सम्यक् भाव। पतन के तीन कारण हैं-मिथ्यादृष्टिकोण, मिथ्याव्यवहार और मिथ्याभाव। ये उत्थान-पतन के मूलभूत कारण हैं। प्रश्न होता है कि हमारा दृष्टिकोण, व्यवहार एवं भाव मिथ्या क्यों होते हैं, उनका माध्यम क्या है? उन पर किसका नियंत्रण है?वास्तव में इन पर दो तरह का नियंत्रण होता है। एक बाहरी परिस्थितियों का जो निमित्त कारण है तथा दूसरा अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का जो उपादान कारण है। इसमें प्रथम रूप में आन्तरिक उपादानों का तथा द्वितीय रूप में बाहरी उपादानों का परिष्कार घटित करना जीवन-विज्ञान का प्रमुख कार्य है।

परिष्कार या रूपान्तरण की प्रक्रिया के निम्नांकित तत्त्व हैं-

1. श्वास दर्शन-मन की स्थिरता के लिए महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। श्वासदर्शन से ही वृत्तियां, आदतों में परिष्कार होता है। आमूलचूल परिवर्तन में श्वास महत्त्वपूर्ण साधन है।

2. शरीर दर्शन-शरीर दर्शन का अर्थ है कि शरीर के भीतर होने वाली समस्त क्रियाओं का साक्षात्कार करना। शरीर के भीतर अनेक रसायन हैं, विद्युत हैं, प्रकम्पन हैं। उन रसायनों, विद्युत-प्रवाहों के द्वारा किस प्रकार आदतें बनती हैं, बिगड़ती हैं, इन सबको देखने का अर्थ है- शरीर दर्शन या शरीर-प्रेक्षा। जब व्यक्ति वृत्तियों एवं आदतों को देखना प्रारंभ करता है तो निश्चित ही उसमें रूपान्तरण होता है।

3. अनुप्रेक्षा-भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न आदतें होती हैं। किसी में नशे की, किसी में गुस्से की, किसी में अधिक बोलने की आदत होती है। इन सभी का महत्त्वपूर्ण प्रयोग अनुप्रेक्षा है। आज के वैज्ञानिकों का मानना है कि एक ही बात बार-बार दोहराने से यह बात अवचेतन मन तक पहुंच जाती है और इनके माध्यम से आदतों में बदलाव आता है।

4. कायोत्सर्ग-शिथिलीकरण या तनाव विसर्जन की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के द्वारा तनाव को कम किया जा सकता है। तनाव कम होने से अनेक प्रकार की समस्या का समाधान हो सकता है।

इस प्रकार के प्रयोग स्वभाव, आदतों और विचार परिवर्तन के लिए महत्त्वपूर्ण है। इनके अभ्यास से व्यक्ति के व्यक्तित्व का रूपान्तरण होता है और समाज में भी नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

संक्षेप में आचार्य तुलसी की इस सिद्धांत के विकास के पीछे मूलभावना मनुष्य का संतुलित विकास करना था। साथ ही शिक्षा की अपूर्णता को पूरा करने का प्रयास भी था। सम्पूर्ण शिक्षा एवं संतुलित व्यक्तित्व विकास से ही सामाजिक, नैतिक क्रान्ति घटित हो सकती है। क्रान्ति के लिए व्यक्तियों के प्रशिक्षण की दृष्टि से यह प्रयोग महत्त्वपूर्ण रहा। इससे न केवल शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य मिला वरन् स्कूली शिक्षा में भी विद्यार्थी में नैतिक मूल्यों का बीजवपन संभव हो सका। ❐

अपनी योग्यता को विकसित करो
तुम आजीवन उपयोगी रह सकोगे।

- आचार्यश्री महाश्रमण

श्रद्धावनत

दौलत कैलाश डागा

गैलेक्सी इम्पेक्स, जयपुर